मई १९९० हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

धम्मवाणी

जीरन्ति वे राजरथा सुचित्ता,
अथो सरीरम्पि जरं उपेति।
सतं च धम्मो न जरं उपेति,
सन्तो हवे सब्भि पवेदयन्ति॥

– धम्मपद ११-६

रंग-बिरंगे सुचित्रित राजरथ जीर्ण हो जाते हैं और यह शरीर भी जीर्णता को प्राप्त हो जाता है। परन्तु सन्तों का धर्म तरोताजा बना रहता है, जीर्ण नहीं होता। समझदार सभ्यों को सन्त यही समझाते हैं।

विलुप्त संपदा

बोधिसत्व सिद्धार्थ गौतम पैंतीस वर्ष की अवस्था में सम्यक् सम्बुद्ध बने। उन्हें परमसत्य निर्वाण का साक्षात्कार हुआ। उन्होंने इस सच्चाई का दर्शन किया कि मैं भवचक्र से नितांत विमुक्त हुआ। अब मेरा पुनर्जन्म नही है।

तदनन्तर सात सप्ताह बोधिवृक्ष के आसपास विमुक्तिसुख में बिताए और अपने अनुभव पर उतरी नैसर्गिक सच्चाइयों का प्रत्यवेक्षण करते रहे। किस प्रकार अपनी ही नासमझी के कारण प्राणी निरयलोक से भवाग्र ब्रह्मलोक के बीच जन्म-जन्मांतरों तक भव-भ्रमण करते रहता है। विपश्यना विद्या द्वारा अपने ही भीतर इस भवचक्र का साक्षात्कार करते हुए इससे मुक्ति पा लेता है। इसी जीवन में नित्य, शास्वत, ध्रुव परमपद का साक्षात्कार कर लेता है। विपश्यना की इस विद्या ने मुझे विमुक्त किया। इसे जो सीख लेगा वही अभ्यास करते हुए देर-सबेर भवदुख से विमुक्त हो ही जायेगा। यह विद्या इतनी सरल, स्वच्छ और स्पष्ट है तो भी अपनी-अपनी सांप्रदायिक मान्यताओं और कर्मकांडोंके जंजालों में उलझे हुए लोग इसे समझना ही नहीं चाहेंगे, इसे आजमाकर देखना तो दूर की बात हुई। कुछ समय तक ऐसा चिंतन चला। फिर उनके भीतर अनंत करुणा का झरना फूट पड़ा। अरे, कुछ लोग तो संसार में ऐसे हैं ही, जिनकी आंखों पर मिथ्या दार्शनिक मान्यताओं के जाले बहुत झीने है। वे इन जालों को दूर करके इस विद्या द्वारा नैसर्गिक सच्चाई का यथाभूत दर्शन कर अवश्य अपना कल्याण कर लेंगे। जितनों का हितसुख सधे, उतना ही भला। प्यासी धरती पर करुणा का मेघ-जल बरसना ही चाहिए। प्यासी धरती पर धर्मगंगा बहनी ही चाहिए। जो बहुत उपजाऊ होगी, वह इससे तत्काल लाभान्वित हो जायेगी। जो ऊसर-बंजर होगी, वह इस तत्काल लाभ से वंचित रह जायेगी। पर धर्मगंगा को तो बहना ही चाहिए।

और बह चली धर्मगंगा। जीवन के बचे हुए पैंतालीस वर्ष इस धर्मगंगा को प्रवाहित करने में ही बिता दिए। सत्य की खोज में नितांत निवृत्तिमान हुआ व्यक्ति अब पूर्णता प्राप्त कर असीम प्रवृत्ति में लग गया। अहर्निश प्रवृत्ति ही प्रवृत्ति। रात को लगभग एक प्रहर शरीर को विश्राम देने के लिए लेटते, बाकी सारा समय असीम करुणचित्त से लोकसेवा ही लोकसेवा में लगे रहे। इस सेवा के बदले कुछ पाने की भावना नही थी। जिसे अनुत्तर विमुक्त अवस्था प्राप्त हो गयी हो, उसे अब पाने के लिए और क्या रह गया भला? अब तो केवल बांटना ही बांटना था और जीवनभर मुक्तहस्त से, करुणचित्त से बांटते ही बांटते रहे।

जिस व्यक्ति की जैसी पृष्ठभूमि देखी, जिसका जैसा मानसिक धरातल देखा, जिसकी जितनी ग्रहण-क्षमता देखी, उसे उसकी समझने की शक्ति के अनुरूप ही उचित शब्दावली में, उपमाओं और उदाहरणों में, सरल-सरल लोकभाषा में धर्म समझाया। सांप्रदायिक धर्म नही; सार्वजनीन धर्म, ऋत धर्म। नैसर्गिक नियमों की सीधी-सीधी सार्वजनीन बातें – यह कारण होगा तो यह परिणाम आयेगा ही; यह कारण नही होगा तो यह परिणाम भी नही आयेगा। मन में विकार जागेगा तो उसके साथ दुःख जागेगा ही। विकार जितना-जितना बढ़ेगा, दुख उतना-उतना ही बढ़ता जायेगा। विकार जागना बंद हो जायेगा तो दुख स्वतः बंद हो जायेगा। निसर्ग का यह सार्वजनीन, सार्वदेशिक, सार्वकालिक नियम। इसी नियम को स्वानुभूति द्वारा जानकर मानस की जड़ों तक विकार-विमुक्त होने की विपश्यना विधि सिखाई। पैंतालीस वर्षों तक यही सिखाते रहे। दुख सार्वजनीन है और दुख से बाहर निकलने का यह उपाय [विपश्यना] सार्वजनीन है।

प्रत्येक वर्षावास के तीन-चार महीने किसी एक स्थान पर विहार करते। अधिकतर श्रावस्ती या राजगृह जैसे घनी आबादीवाले नगरों के समीप बने हुए विहारों में रहते, ताकि नगर के अधिक से अधिक लोग इस मांगलिक विद्या को सीखकर लाभान्वित हो सकें। वर्षावास के बाद बाकी सारा समय उत्तर भारत के गांव-गांव, निगम-निगम, नगर-नगर में धर्मचारिका करते हुए लोकसेवा करते और लाखों-करोड़ों लोगों को विकार-विमुक्ति की विपश्यना विधि का संदेश देते, उसका समुचित निर्देशन देते।

देश के हर संप्रदाय के, हर मान्यता के, हर जाति, वर्ग व वर्ण के, हर पेशे के, हर प्रदेश के लोग भगवान के संपर्क में आए और उनके बताए मार्ग पर चलकर मंगललाभी हुए। इसी जीवन में लाभान्वित हुए।

चाहे मगधनरेश बिम्बिसार हो या कोशलनरेश प्रसेनजित, चाहे महारानी मल्लिका हो या महारानी खेमा, चाहे सेनापति बंधुल हो या सेनापति सिंह, चाहे राजपुरोहित कात्यायन हो या राजवैद्य जीवक, चाहे दानवीर सद्गृहस्थ अनाथपिंडिक हो या भिखमंगा कोढ़ी सुप्पबुद्ध, चाहे राजमहिषि श्यामावती हो या दासी खुज्जुत्तरा, चाहे संन्यासी जटिल काश्यपबंधु हों या परिव्राजक दारुचीरिय, चाहे सद्गृहिणी विशाखा हो या नगरवधू अम्बपाली, चाहे ब्राह्मण महाकाश्यप हो या भंगी सुनीत, चाहे ब्राह्मण सारिपुत्र हो या चांडालपुत्र सोपाक, चाहे सदाचारी सीलव हो या हत्यारा अंगुलिमाल; जो भी भगवान बुद्ध के संपर्क में आया, जिसने भी धर्मगंगा में डुबकी लगाई, जिसने भी विपश्यना साधना का अभ्यास किया, वही बदल गया।

पैंतालीस वर्षों तक भगवान ने हजारों सदुपदेश दिए। उनके परिनिर्वाण के चंद महीनों के बाद ही उनके पांच सौ प्रमुख भिक्षु शिष्यों की प्रथम संगायन समिति ने भावी पीढ़ियों के लाभार्थ इन उपदेशों का संकलन-संपादन किया, जो कि त्रिपिटक के नाम से जाना गया। कुछ समय बाद उन पर भाष्य [अर्थकथाएं] और टीकाएं, अनुटीकाएं लिखी गयी। यह सारा साहित्य बहुत विशाल है। यद्यपि

भारत ने इसे खो दिया, पर पड़ोसी ब्रह्मदेश ने कल्याणी विपश्यना विद्या के साथ-साथ इस विशाल वाङ्मय को भी शुद्धरूप में सुरक्षित रखा है।

इस संगायन समिति ने भगवान के उपदेशों को संपादित करते हुए उनमें से अनेकों का संदर्भ भी संकलित किया। याने अमुक उपदेश कब, कहां, किसे, क्यों और किस परिस्थिति-परिवेश में दिया गया? उपदेशों की यह भूमिकाएं उन साक्षी भिक्षुओं द्वारा संकलित किए जाने के कारण ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। यह समस्त साहित्य अब पालि भाषा में, बर्मी लिपि में उपलब्ध है। जब नागरी लिपि और हिन्दी भाषा में प्रकाशित होगा तो देश की एक विलुप्त अनमोल संपदा प्रकाश में आयेगी। इस विशाल साहित्य में तत्कालीन भारत की धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, प्रशासनिक, शैक्षणिक, व्यापारिक, सामाजिक, पारिवारिक अवस्थाओं का आंखों देखा एक वृहद् रंगीन चित्रपट प्रस्तुत होगा। यद्यपि उस संकलन का यह रंचमात्र भी उद्देश्य नही था कि उस समय के ऐतिहासिक इतिवृत्त को संपादित किया जाय। उद्देश्य तो केवल यही था कि प्रत्येक भूमिका तत्संबंधित उपदेश के आशय को अधिक स्पष्ट करने और आध्यात्मिक प्रेरणा प्रदान करने में सहायक हो। यही कारण है कि सार्वजनीन और सार्वकालिक सनातन धर्म का आधार होने के कारण यह साहित्य आज भी उतना ही तरोताजा और प्रेरणास्पद है।

अभी तक तो यह विशाल वाङ्मय पालि भाषा में और नागरी लिपि में ही संपूर्णरूप से प्रकाशित नही हुआ है। इसका प्रकाशन शीघ्र से शीघ्र हो और साथ-साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी में तथा अन्यान्य भारतीय भाषाओं में इसका सही अनुवाद हो, ताकि विपश्यी साधकों को साधना की गंभीरता और अधिक गहराई से समझ में आए और उन्हें अभ्यास में और अधिक सफलता मिले। जो विपश्यी साधक नही हैं, उन्हें भी अपने देश की इस महान पुरातन अध्यात्म-निधि द्वारा मंगल-प्रेरणा प्राप्त हो और दुःखों से नितांत विमुक्त होने का सही वैज्ञानिक और सार्वजनीन मार्ग मिले।

सब का मंगल हो! कल्याण हो!!

कल्याण मित्र,
स. ना. गो.

हर्ष-संवाद

१९५१ में भारत सरकार की ओर से नालंदा में "नव नालंदा महाविहार" की स्थापना हुई थी। परम आदरणीय स्व. भदन्त जगदीश काश्यपजी के अथक परिश्रम से और डॉ. बापट, डॉ. धर्मरतनजी, डॉ. ऊ जागराजी, डॉ. महेश तिवारी, डॉ. साम्तानी, डॉ. अंगराज चौधरी आदि योग्य व्यक्तियों के सहयोग से मूल पालि तिपिटक प्रकाश में आया था। परन्तु दस-पन्द्रह वर्षों में ही वह अप्राप्य हो गया। इस अनमोल साहित्य का दूसरा संस्करण निकला ही नही पाया। आज तो ४१ ग्रन्थों वाले इस तिपिटक के किसी इक्के-दुक्के भाग की ही कोई एक प्रति कही भले मिल जाय।

श्रद्धेय काश्यपजी के बाद डॉ. उपासक और डॉ. टांटिया के कुशल निर्देशन में कुछ एक अट्ठकथाओं के प्रकाशन की धारा चली, परन्तु वह भी क्षीण होती होती लगभग रुक ही गयी। टीकाओं, अनुटीकाओं को तो छूआ तक नही गया। इसी प्रकार अनुवाद का काम भी अधूरा ही रह गया। ऐसी दयनीय अवस्था में यह सचमुच हर्ष का संवाद है कि कतिपय योग्य विपश्यी साधकों के मन में अब यह धर्मसंवेग जागा है कि इस परम कल्याणी धर्मवाणी का पुनरुद्धार होना चाहिए। भारत की यह अनमोल निधि भारतीय लिपियों और भाषाओं में प्रकट हो सके, जिससे कि मंगलदायिनी विपश्यना साधना के प्रयोगात्मक पक्ष के साथ-साथ सैद्धांतिक पक्ष भी प्रकाश में आएं। पटिपति के साथ-साथ परियत्ति भी जाग्रत हो।

अतः लगता है भारत से विलुप्त हुई यह सुरस सुधारस-वाहिनी सरस्वती अब यहां पुनः प्रवाहमान होगी और जन-जन का कल्याण करेगी। इसके शुभ लक्षण प्रकट होने लगे हैं। इस विशाल साहित्य का बर्मी से देवनागरी में लिप्यांतर, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने के भागीरथ प्रयास का बीड़ा "विपश्यना विशोधन विन्यास" ने उठाया है।

पिछले एक वर्ष से इस निमित्त उचित क्षेत्र तैयार करने का काम चल रहा था। अनेक विपश्यी साधकों को धम्मगिरि पर और बहुतों को घर बैठे पत्राचार द्वारा बर्मी लिपि का प्रशिक्षण दिया जा रहा था। इसमें प्रभूत सफलता मिली है। अनेक लोग लिप्यांतरण की धर्मसेवा देने के लिए तैयार हुए हैं। प्रशिक्षण का यह क्रम अब भी चल ही रहा है।

अब तक तो लिप्यांतरण की योजना इसी उद्देश्य से थी कि जैसे सारा त्रिपिटक नागरी लिपि में कम्प्युटर में संकलित हो चुका है, वैसे ही अट्ठकथाओं, टीकाओं और अनुटीकाओं का सारा साहित्य भी हो जाय, जिससे कि विशोधन का काम अधिक सरल और प्रामाणिक रूप में हो सके। परन्तु अब यह निर्णय लिया गया है कि जो-जो साहित्य कम्प्युटर में संकलित होते जायँ, उनमें पाठभेद आदि की आवश्यक पाद टिप्पणियां तैयार करके उसे पुस्तकाकार प्रकाशित भी करते जायँ। पहले त्रिपिटक के सारे ग्रंथ शीघ्र से शीघ्र प्रकाशित किए जायँ, क्योंकि वे कम्प्युटर में संकलित किए जा चुके हैं। तत्पश्चात् औरों की बारी आए। यद्यपि तिपिटक के नागरी लिपि में प्रकाशित होने पर भी भाषा पालि ही रहेगी। अतः पालि न जाननेवालों को इसका पूरा लाभ नही मिलेगा। पर विपश्यना विशोधन विन्यास ने यह सर्वहितकारी निर्णय लिया है कि जब तक तिपिटक की प्रत्येक पुस्तक का सांगोपांग हिन्दी अनुवाद तैयार न हो, तब तक पालि के प्रत्येक ग्रंथ की विशद भूमिका हिन्दी भाषा में, उस ग्रन्थ के साथ-साथ छपे, जिसमें उस ग्रंथ के प्रमुख सूत्रों का सार दे दिया जाय और जहां-जहां विपश्यना से संबंधित वाणी है, उस पर अधिक प्रकाश डाला जाय; ताकि सामान्य साधकों को इतना तो लाभ मिल सके। आगे चलकर अर्थकथाओं, टीकाओं, अनुटीकाओं आदि के जो ग्रंथ पालि भाषा में प्रकाशित हों, उनमें भी प्रत्येक के साथ इसी प्रकार की भूमिका अवश्य जुड़े।

इस वृहद् धर्मयज्ञ की संपूर्ण सफलता तो अंततः समस्त पालि साहित्य के हिन्दी अनुवाद द्वारा ही होगी। इस समग्र साहित्य में विपश्यना साधना प्राण स्वरूप समाई हुई है। अतः सही-सही अनुवाद वही भाषाविद् कर सकेंगे, जो साधना-विधि का अभ्यास भी करते हों और जिनमें धर्मसेवा करने का अदम्य उत्साह भी हो। पुण्य पारमी वाले लोगों को धर्म स्वयं ही इस पावन गंगा की ओर खैच लायेगा। समय पक गया है। जन-जन हितकारिणी विपश्यना की ज्ञानगंगा सारे देश में शीघ्र ही प्रवाहमान होनेवाली है। लोक-मंगल होगा ही, लोक-कल्याण होगा ही।

कल्याण मित्र,
स. ना. गो